Journal of Advances in Developmental Research (IJAIDR)
E-ISSN: 0976-4844 ● Website: www.ijaidr.com ● Email: editor@ijaidr.com

स्वतंत्रोत्तर कविता की आलोचना

डॉ उषा शर्मा

व्याख्याता-हिंदी साहित्य
राज. महाविद्यालय, मांडलगढ़

बीसवीं शताब्दी में साहित्य समीक्षा के नए आयाम के रूप में समाजशास्त्रीय समीक्षा प्रस्तुत की गई है। यह समीक्षा साहित्य के विविध पक्षों को प्रत्यक्ष स्तर पर विश्लेषण करने के लिए वस्तुपरक दृष्टि को महत्व प्रदान करती है। यह समीक्षा साहित्य सृजन को मानवीय अतः क्रियाओं का परिणाम मानते हुए उसके संरचनात्मक विश्लेषण को भी महत्वपूर्ण मानती है। साहित्य रचना मानव का सुप्रयोजन पुरुषार्थ है। उसके सृजन के मूल में सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों पक्ष रहते हैं। साहित्य समाज का दर्पण है। उसमें सामाजिक उपादेयता का रहना अपेक्षित है। अतः साहित्य में लोकमंगल की भावना उसके व्यावहारिक पक्ष के समर्थन का आधार है। आज साहित्य समीक्षा का एक नवीन रूप अभिव्यक्त हुआ है।

साहित्य और समीक्षा दोनों का घनिष्ठ संबंध है। समीक्षा द्वारा साहित्य के गुण अवगुणों को ही प्रकाश में नहीं लाया गया वरन उसके आस्वाद और उत्पाद की कसौटी को भी प्रस्तुत किया गया है। यही कारण है कि साहित्य समालोचना के विविध रूप विकसित हुए- काव्य शास्त्रीय या सैद्धांतिक आलोचना, ऐतिहासिक आलोचना, तुलनात्मक आलोचना, मनोवैज्ञानिक आलोचना, सांस्कृतिक आलोचना, राजनीतिक आलोचना, प्रगतिवादी आलोचना, समाजशास्त्रीय आलोचना आदि विविध रूप हिंदी समीक्षा के क्षेत्र में आज दिखाई देते हैं।

"आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने स्वतंत्रोत्तर हिंदी आलोचना की काव्य दृष्टि में गुणात्मक परिवर्तन किया है। उन्होंने हिंदी आलोचना को मानवतावाद की उदारता से संपन्न वैज्ञानिक दृष्टि देने का प्रयास किया। हिंदी साहित्य का आदिकाल, हिंदी साहित्य की भूमिका, कबीर आदि समीक्षा- ग्रंथों में द्विवेदी जी ने एक व्यापक सांस्कृतिक परिदृश्य में मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। उनके मत में साहित्यकार का मूल लक्ष्य मानव हित साधन है।"[1]

स्वातंत्रोत्तर कवियों ने अपने सामाजिक परिवेश में बहुत अंतर अनुभव कर कविता को भी इस रंग में रंगने का प्रयास किया है। उनका काव्य स्वर अनेक कुंठाओं से और पिड़ाओं से भरा हुआ दिखाइ देता है। यदि इस काव्य की समीक्षा सैद्धांतिक मूल्य के अनुसार की जाए तो उचित नहीं होगा। नई कविता और साठोत्तरी कविता के कवियों ने और उसके बाद के कवियों ने तो अपने समाज की हू-ब-हू तस्वीर प्रस्तुत कर दी है। कई नए प्रयोगों ने इस कविता में समीक्षा की आवश्यकता को अनुभव किया है। 70 के दशक के बाद के कवि तो अपने समीक्षक आप बनते दिखाई देते हैं इस शोध पत्र में शमशेर बहादुर, केदारनाथ, नागार्जुन जैसे प्रभावशाली कवियों के काव्य के स्वसंवाद की समीक्षा करने का प्रयत्न किया गया है।

आलोचना का मूल उद्देश्य कवि की कृति का सही दृष्टिकोण से आस्वाद कर पाठकों को उस प्रकार के आस्वाद में सहायता देना, उसकी रची रुचि को परिमार्जित करना एक साहित्य की गतिविधि निर्धारित करने में योग देना है। इस प्रकार काव्य-कृति के गुणों का उद्धघाटन आलोचकों का कर्म है। इसके अतिरिक्त किसी काव्य विशेष में कवि-प्रतिभा का पूर्ण उद्धघाटन कर उसके गुण और दोषों से पाठकों को अथवा दर्शकों को अवगत कराना

उसका धर्म है। 'कलाकृति में कवि की मन:स्थिति किस रूप में व्यक्त हुई है उससे भी अवगत कराना समालोचक का कार्य है। इसके अतिरिक्त उसे कृति पर उस युग की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक सांस्कृतिक परिस्थितियों का किस प्रकार प्रभाव पड़ा है इसका भी मूल्यांकन समालोचक करता है।'[2]

हमारे इन शताब्दी कवियों ने कविता के अलावा निबंध उपन्यास आलोचना आदि गद्य विधाओं में भी बहुत महत्वपूर्ण काम किया है। कथा-साहित्य में अज्ञेय और नागार्जुन अपने समकालीन गद्यकारों से इस मायने में आगे है कि जो प्रमुखतः गद्यकार है उन्होंने अपनी सशक्त कविता नहीं लिखी है। समकालीन रचनाकारों का मूल्यांकन हो, या साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन हो, अथवा नारीवादी आलोचना हो, शमशेर अपने कई समकालीन आलोचकों के पीछे तो नहीं ही है। लेकिन अगर हम कविता की बात करें तो भाव तथा विचार और भाषा-शिल्प तथा संस्कार की बात तो करेंगे ही।

आज जब भाव तथा विचार का स्वरूप और उसके प्रति हमारी समझ में खासा परिवर्तन आ चुका है, अब हम पुरानी खोल में नए लोग हो गए हैं, अब जब न प्रकृति-मनुष्य-ईश्वर, भाषा-अभिव्यक्ति-संदर्भ, देश-काल-सापेक्षता- सभी के विषय में हम ठीक वैसा नही सोचते तो ये हमारे कवि क्यों हमारे लिए महत्वपूर्ण है। अब जब कभी-कभी यह चर्चा भी होने लगी है कि क्या सचमुच साहित्य की आवश्यकता है भी, सिवाय कि मेरे आपके तरह से लोगों के लिए एक आजीविका के साधन के रूप में?

'अज्ञेय के अनुसार अपनी अनुपयोगिता की अनुभूति से आहत होकर कलाकार जब विद्रोह कर देता है तो उसका यह विद्रोह ही कलात्मक सृष्टि के रूप में प्रकट होता है इस प्रकार अज्ञेय जी ने प्रकार अंतर से कल की मूल में हीनता की अनुभूति और उसकी पूर्ति के पर्यटन की बात को स्वीकार किया है।'[3]

इसमें कोई संदेह नहीं कि काव्य व शिल्प और शैली कविता की जिंदगी की दीर्घता तय करते हैं। इस संदर्भ में मुझे लगता है कि नागार्जुन की कविताएं हमारे समय की और आने वाले समय की बड़ी मूल्यवान कविताएं बनी रहेगी। उनकी यह कविताएं जो अत्यंत सामयिक है, वे भी अपनी शैली के कारण आकर्षक बनाए रखेगी। नागार्जुन और शमशेर के यहां गीति काव्य रूपों का तथा छंदों का गजब का वैविध्य है। पाश्चात्य आलोचक मिडिल्टन मरे के अनुसार – 'कला जीवन की सजकता है तथा आलोचना कला की सजकता है।' नागार्जुन चूंकि संस्कृत, पालि, प्राकृत, मैथिली बंग्ला आदि के प्रखंड ज्ञाता थे, अतः उनकी कविताओं में काव्यरूपों एवं छंदों का वैविध्य दिखाई पड़ता है। मुझे कहीं बार लगता है कि यह कवि हिंदी कविता के विलक्षण स्वभावों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये स्वभाव उनकी काव्य-शैलियों के निर्माण में सहायक साबित हुआ हैं। इन शैलियों को कवियों ने अपने जीवन से, अपने विभिन्न संस्कारों से ग्रहण किया है। इन चारों के काव्य-विश्व में एक विलक्षण बात सामने आती है। इनमें प्रकृति के प्रति जो अथाह प्रेम है वह जब उनकी कविता में प्रकट होता है तो कवि-स्वभावानुकूल ही। अज्ञेय की प्रकृति बड़ी अनुशासनबद्ध लगभग औपचारिक सी खिलती खुलती है तो नागार्जुन के यहां प्रकृति एकदम उन्मुख खुला जंगल। 'शमशेर जी की कविताओं में प्रकृति ऐन्द्रीयता से भरपूर, निजत्व भावों से समर तो केदारनाथ अग्रवाल की लोक रंग में रंगी प्रकृति दिखाई सर्वत्र पड़ती है।' यह प्रकृति केवल बाहर की नहीं है परंतु भीतर की भी है। जैसे कवि की श्रेष्ठता को नापने का एक मापदंड उसका स्त्री के प्रति दृष्टिकोण माना गया है उसी तरह काव्य-वस्तु के प्रति कवि के रूख की पहचान करने का एक मापदंड उसका प्रकृति-चित्रण हो सकता है। प्रकृति-चित्रण हिंदी में अपने पूरे जोम पर छायावाद में देखा गया है परंतु छायावादियों का प्रकृति के प्रति नजरिया एक जैसा तो नहीं था। प्रकृति मनुष्य की निकटतम सहचर है- गोत्र की दृष्टि से। (प्राणियों का जो यह सगोत्र ही माना जाएगा) प्रकृति के प्रति कवि का व्यवहार उसके इतर सामाजिक व्यवहारों को पहचानने में निश्चय ही सहायक हो सकता है। तभी इन

चारों की कविताओं में अभिव्यक्त प्रेम भी ऐसा ही है और थोड़ा और गहरे जाओ तो इन चारों में आता समाज भी ऐसा ही है। यह हिंदी कविता की रचनागत शैलियों को रेखांकित करती है। यानी कि उन्मुक्तता, ऐन्द्रीयता, शालीनता, औपचारिकता तथा लोकरंगिता - इन चार स्वभावों की कविता का प्रतिनिधित्व ये कवि करते हैं। केदारनाथ प्रकृति से मनुष्य हृदय तक जाते हैं 'अब भी है कोई चिड़िया जो सिसक रही है, नील गगन के पंखों में, नील सिंधु के पानी में, मैं और चिड़िया की सिसकन से सिहर जाता हूं, यह चिड़िया मानव का आकुल हृदय है। आग और बर्फ की वसीयत, फूल नहीं रंग बोलते हैं।'[4] इसलिए उनकी चिंता हमेशा समाज के आखिरी मनुष्य के सुख-दुख के साथ जुड़ी हुई थी। इसीलिए उनकी प्रकृति में वह औपचारिकता नहीं थी जो हमारे संभ्रांत समाज का लक्षण है, जिसमें हम और आप रहते हैं। मैंने धूप से कहा कि थोड़ी गर्मायी दोगी उधार - कविता के कवि की हम आलोचना चाहे करें पर हमारा विश्व भी यही है... एक बड़ी औपचारिकता और शालीनता इन कविता में दिखाई पड़ती है। एक संभ्रांत कल्चर। एक ऐसा कल्चर जो जाने अंजाने हमने स्वीकार कर लिया है। संभवतः इसलिए हमें केदारनाथ और नागार्जुन की प्रकृति का उन्मुक्तपन अच्छा लगता है। प्रेयसी को कलगी बाजरे की कह देने से स्पष्टता की अपेक्षा कठोर प्रेमिका से कन्फ़्रट करने वाले शमशेर की प्रेमिका और प्रकृति हमें भाती है कि अपनी तरफ से हम युद्व-विराम यह कह कर घोषित कर देते हैं ..... कि अगले जनम में ..... हम सब ऐसे हैं। 'आलोचना का कार्य केवल किसी कृति के औचित्य अनौचित्य का विवेचन नहीं है, किंतु यह भी सत्य है कि वह किसी निश्चित मापदंड स्थापित करें। उचित नियमों को अपनाकर आलोचना में प्रवृत्त होना और सिद्धांतों के आधार निर्णय देना सैद्धांतिक आलोचना कहलाता है।' [5]

निराला के बाद उनकी परंपरा से प्रायः नागार्जुन को रखा जाता है। इसका कारण है कि इन दोनों में ही ओजत्व है। नागार्जुन की कविता को आप पढ़ना शुरू करें तो प्रत्येक शब्द में से नागार्जुन जिंदा होते दिखाई पड़ते हैं। अक्षर-देह से वास्तविकता नागार्जुन बाहर आते दिखाई पड़ते हैं। नागार्जुन में साहस है, रणनीति है, निश्चंद्रता है और कवि होने के शौक से अधिक कवि होने की जिम्मेदारी दिखाई पड़ती है। यह जिम्मेदारी कविता के प्रति उन्मुख ना होकर काव्य-वस्तु के प्रति अधिक है। इसलिए नागार्जुन के शब्द जहां काटो तो खून नहीं कि मुद्रा में अगर होते हैं तो गजब से ख़िलन्दडेपन को प्रकट करते हुए भी दिखाई देते हैं। नागार्जुन की कविता बोलती है। खड़ीबोली कविता के इस गुण का विकास नागार्जुन के यहां खूब इफ़रात से हुआ है। 'उनकी कविता जहां राजनेताओं की ऐसी तैसी कर सकती है वहीं किशोरों को भी लुभा सकती है। जो जीवन को पूरा का पूरा जिएगा वह हर तरह की कविताएं इफ़रात में लिखेगा। यह तो अच्छा ही है कि कवियों का जीवन आलोचकों के हाथ में नहीं होता, न ही विचारकों के वरना कितने ही कवियों की कविताएं रचना की सुबह नहीं देख पाती। 'आलोचना का अर्थ है पक्षपात रहित होकर न्याय पूर्वक किसी पुस्तक के यथार्थ गुण-दोष की विवेचना करना और उसके ग्रंथकर्ता को विज्ञप्ति देना।'[6]

आजीविका के लिए चाहे आप संपादकत्व करें या वकालत, पर जीने के लिए तो कविता उनके लिए सांस के समान ही थी। जो सूरज को आईना कहता हो (केदारनाथ) और जिनकी पुतलियां में सूरज डूबता हो (श.ब.) ऐसे कवि हमारे लिए हर समय जरूरी रहेंगे। क्योंकि जमीन का जमीर नहीं बदला है। (केदारनाथ) जमीनी यथार्थ का पैकेज बदलता है, उसके भीतर के कंटेंट में कुछ परिवर्तन आता भी है परंतु मूलभूत तत्व तो एक ही रहते हैं।

आज की आलोचनात्मक भाषा में बात करें तो नागार्जुन और रविंद्र नाथ के बादल के गिरने की रुमानियत जहां हमें कालिदास कि कविता तक ले जाती है। 'किसी आलोचक के लिए आलोचना कर्म में प्रति होने के लिए कितनी बुद्धि और मर्म ग्राही प्रज्ञा अपेक्षित है।'[7]

समाज में दे देने की उदार और मानवीय गरिमा के सर्वोत्तम भाव का जब लगभग तिरोधान हो चुका है और विज्ञापनों की मायावी दुनिया में बैठे ये लोग एक सेमिनार के लिए ही याद कर रहे है या मुट्ठियों से फिसलती अपनी स्वेदनाओ को बचाने के लिए याद करना चाहते हैं।

इस समय में एक और बात है जो हमारे पारिवारिक भाव को चुनौती देती है। हमारे समाज में जनता का नेतृत्व करने वाले लोगों के पारिवारिक भाव को जनता ध्यान से देखती है। इस परिवारिक भाव में अन्य संबंधों की अपेक्षा पत्नी के प्रति भाव का एक खास मूल्य है। समाज का भावनात्मक नेतृत्व कवि साहित्यकार करता है। केदारनाथ अग्रवाल पत्नी के लिए लिखी कविताओं के लिए प्रसिद्ध है। वह स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं कि 'जैसा मैंने अपनी पत्नी पर लिखा और किसी ने नहीं लिखा, केदारनाथ में अपनी पत्नी के प्रति भाव को प्रकृति में मिला लिया। 'क्योंकि प्रकृति ही रहने वाली है। मैंने पहले उसको अपने शरीर में लिया, फिर अपनी चेतना का अंश बना लिया वह तो वह मेरे आत्म प्रसार की रमणी बन गई। वही कोई द्वंद नहीं है उनके भीतर। तुम मुझे प्रेम करो मैं तुम्हें प्रेम करूं - इतना काफी है। फिर चाहे तुम राम से करो, कृष्ण से करो जैसा मैं प्रकृति से करता हूं।' नागार्जुन अपनी सिंदूर तिलकित भाल कविता में भी पत्नी को याद करते हैं तो पूरे ग्रामीण परिवेश को साथ याद करते हैं। अज्ञेय के लिए पत्नी उनके घर है बल्कि घर की एकमात्र खिड़की जिससे वे दुनिया को देखते समझते हैं। घर और पत्नी इतने गुल मिल गए हैं कि उन्हें यह याद भी नहीं रहता वैसे ही जैसे सांस लेते हुए हमें याद नहीं रहता कि हम सांस ले रहे हैं। शमशेर अपनी मृत पत्नी को याद करते हुए कहते हैं कि 'तुम आओ तो खुद घर में मेरा आ जाएगा, इन कोणों में मकान में तुम जिसकी जिसकी हया, लय हो, तुम मुझे इस अंदाज से अपनाओ जिसे दर्द बेगाना कहे, बादल की हंसी कहे।' 'आज नई पीढ़ी के पाठकों को शमशेर की एक ऐद्रीय रूमानियत किसी तेल या शैंपू के कारण बने घने बालों के संदर्भ दृश्य की ओर ले जा सकती है।'[8]

यहां दो भाव है पत्नी के स्मरण को घर से बाहर के गांव जीवन और प्रकृति में मिला देना और प्रकृति-समाज को पत्नी के होने या स्मरण में मिला देना। क्योंकि समाज में इसी तरह की मानसिकता के लोग विद्यमान है। अतः हर प्रकार के व्यक्ति के लिए ये कवि अपने कवि स्वभाव के साथ महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

यह एक जाना हुआ तथ्य है कि आलोचकों की विचारधारात्मक खींचतान पूर्वाग्रह भी इन कवियों के परस्पर स्नेह संबंध को कम नहीं कर पाए थे।

कवियों के लिए कविता की समझ अधिक महत्वपूर्ण होती है, विचारधारा नहीं। 'स्वयं शमशेर ने जब प्लांट का मोर्चा लिखा तब उन्हें पहले अज्ञेय को दिखा कर ठीक करना चाहते थे। विशेष कर भाषा की दृष्टि से।' यह भी एक सहयोग है कि इन दोनों कवियों की बीमारी में (हालांकि वर्षों का अंतराल बहुत बड़ा है) अपनी तरफ से ठोस मदद के लिए चुपचाप किसी समकालीन कवि सामने आया, तो वह अज्ञेय ही थे। शमशेर जी की अज्ञेय पर लिखी कविता तो प्रसिद्ध है ही बल्कि उन्होंने अज्ञेय पर दो कविताएं लिखी है शमशेर ने नागार्जुन पर भी कविता लिखी है। नागार्जुन ने केदारनाथ अग्रवाल पर लिखी है। केदारनाथ में नागार्जुन पर लिखी है और शमशेर पर भी है। यहां सवाल परस्पर सौहार्द्र का है जो अब धीरे-धीरे क्षीण होता जा रहा है। एक दूसरे के प्रति इस स्पर्धा का भाव किसी भी युग के रचनाकारों में होना सहज स्वाभाविक है। निराला पंत के संदर्भों से हम परिचित है, परंतु एक दूसरे के प्रति सौहार्द्र भाव की खोज करके उदाहरण सामने रखना हमारे आज के समय की आवश्यकता है। अपने समकालीनों का आदर करने की जो संस्कारिता इन कवियों से हमें दाय में मिली है, हमें उसे परंपरा का वहन करना चाहिए क्योंकि आज हमें उनकी सर्वाधिक आवश्यकता है।

हमारे समाज में जहां रचनाएं पाठ बन गई है, पाठ अंतर पाठ बन गए हैं और अंतर पाठ हाइपर टेक्स्ट और मैटा टेक्स्ट बन गए हैं। अथार्थ अब हम एक नई दुनिया में सांस दिए लोग हैं, (कई बार अपने से भी सवाल करने का मन होता है - क्या सचमुच) हमारी दुनिया सर्वथा भिन्न हो गई है। अब हम एक डिजिटल दुनिया में प्रवेश कर चुके हैं पिछली शताब्दी के प्रारंभ में से लेकर उसी शताब्दी के अंत में इन कवियों ने अपना जीवन जी लिया था। बाबरी मस्जिद वाली घटना के बाद भीतर तक हिल जाने वाले शमशेर जी ने बहुत पीड़ा के साथ यह वाक्य कहा था- 'मुझे नहीं मालूम था कि जीते जी अपने ही जीवन काल में यह सब भी देखना पड़ जाएगा।' यह सर्वार्थ अनपेक्षित तथा उनकी कल्पना के बाहर की बात थी। अपने सामने समय को करवट लेते उन्होंने देखा। समय ने एक करवट ली ही थी कि समय की दूसरी करवट में तो हृदय मन सोच सब आलोड़ित होकर जैसे कुचला गए हो।

हमारे विद्यार्थी और हमारी दुनिया में एक फर्क आ गया है। यह फर्क यथार्थ के परसेप्शन का फर्क है। हमारे उनके पठन में फर्क आ गया है। जरूरी नहीं है कि हम उन्हें साहित्य में प्रकट यथार्थ को अपनी कक्षाओं में जिस तरह पढ़ते हैं ठीक उसी तरह स्वीकार करते हों। वे विचारधाराओं की उत्कृष्टता से परिचित नहीं है। वे विमर्शों को लेकर ठीक वैसा नहीं सोचते, जैसा हम सोचते हैं। परीक्षा में तैयारी करके हमारे पढ़ाये अनुसार लिखना एक बात है, पर जीवन संदर्भ में उसे पर विश्वास करना दूसरी बात है। आज आवश्यकता हम परीक्षाओं और डिग्रियों से आगे जाकर इन रचनाकारों पर अलग से सोचे कौन सी बातें हैं इन रचनाकारों में जो हमें वह हमारे समाज को बेहतर बनाने में कामयाब हो सकती है। 'साहित्यकार की चेतना के मूल में सामूहिक चेतना का ही बिम्ब रहता है। यही कारण है कि कोई भी कृति अपने कारण परिवेश या प्रजाति का प्रतिनिधित्व करती प्रतीत होती है। समाजशास्त्रीय समीक्षा सामूहिक चेतना की प्रतीक कृति को समग्र रूप से विश्लेषित कर व्यक्ति समाज और संस्कृति को समझने उसके विकास परिवर्तन एवं प्रगति को समझने तथा विविध कारकों के प्रभाव एवं परिणामों की व्याख्या हेतु सक्षम होती है। व्यक्तिगत चेतना का आधार ही मानवीय अंतर क्रियाएं एवं उनसे प्राप्त अनुभव ही है जिनकी अभिव्यक्ति साहित्यकार या साहित्य शास्त्री कृति में लक्षित करते हैं।'[9]

हमें आज की दुनिया को एक व्यापक दृष्टिकोण से देखना है और भूमंडलीय यथार्थ के संदर्भ में अपने देश के यथार्थ को अपनी रचनाओं में चित्रित करना है। आलोचना के स्तर पर भी हमें भूमंडलीय यथार्थवाद को अपनाकर अनुभव वाद की सीमाओं से मुक्त होना होगा। इस प्रकार हम अपने कथा साहित्य को अधिक सुंदर सार्थक और सोद्देश्य बना पाएंगे। कथा समीक्षा की एक नई दृष्टि और पद्धति के विकास की दिशा में भी आगे बढ़ेंगे।

संदर्भ

1 डॉ जय किशन प्रसाद- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियां पृ. सं. 799
2 डॉ अमर पाथ हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली पृ. सं. 117
3 'त्रिशंकु' अज्ञेय - कला का स्वभाव और उद्देश्य, निबंध से
4 केदारनाथ अग्रवाल – 'पंख पतवार' कविता से
5 बच्चन सिंह आधुनिक हिंदी आलोचना के बीच शब्द पृ. सं. 134
6 हिंदी आलोचना का विकास, नंदकिशोर नवल, पृ. सं. 26
7 रामचंद्र शुक्ल हिंदी साहित्य का इतिहास पृ. सं. 363
8 इंडिया टुडे, साहित्य वार्षिकी 2002- पृ. सं. 17
9 डॉ बी डी गुप्ता, साहित्य समाजशास्त्रीय समीक्षा पृ. सं. 81